CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अ. 2816
1102

श्री वासिष्ठ दर्शन सार

6.1/V

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवासिष्ठदर्शनसारः

(योगवासिष्ठ-महारामायण-प्रतिपादित-सिद्धान्त)

हिन्दी अनुवाद सहित

संग्रहकर्ता तथा अनुवादक

भीखनलाल आत्रेय, एम. ए., डी. लिट्.,

दर्शनाध्यापक,

हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी।

सं. २९७

संस्थान
पुस्तक सं० ११०८
अप्रैल १९३३
का. हि. वि. वि.) वाराणसी-५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

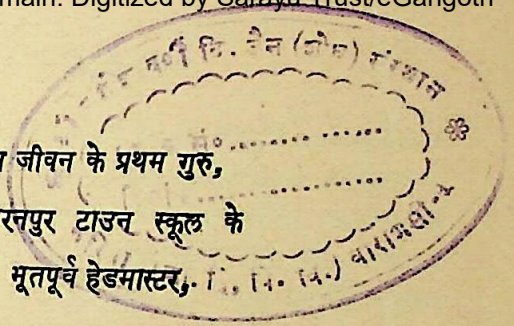

इस जीवन के प्रथम गुरु,
सहारनपुर टाउन स्कूल के
भूतपूर्व हेडमास्टर,

स्वर्गवासी पण्डित चुन्नीलाल,

"मस्तराम"

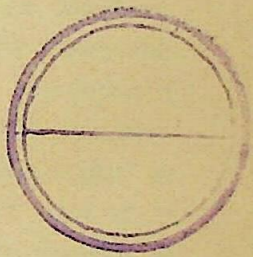

की पुण्य स्मृति में—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राक्कथन ।

श्रीयोगवासिष्ठ महारामायण संस्कृत भाषा में अध्यात्म-विज्ञान के सर्वोत्तम ग्रन्थों में से है। कुछ महानुभावों के मतानुसार तो यह ग्रन्थ भारतवर्ष अथवा भूमण्डल का सर्वोत्तम अध्यात्म ग्रन्थ है। बहुत बड़ा (३२००० श्लोकों में) और गहन होने के कारण इसका प्रचार अधिक नहीं है। यहां तक कि भारतीय दर्शन का अध्ययन और प्रकाश करने वाले आधुनिक बड़े २ विद्वानों का भी ध्यान इसकी ओर कम गया है। लेखक ने कई वर्ष तक इस ग्रन्थ का आनन्ददायक अमृतरस पिया है और अंग्रेज़ी भाषा में इसके ऊपर कुछ लिखा भी है। हिन्दी भाषा में भी एक बड़ी पुस्तक लिखने का विचार है। अवकाशाभाव से न जाने कब यह इच्छा पूरी हो। इसलिये हिन्दी भाषा जानने वाले अध्यात्मज्ञानप्रेमियों के सामने लेखक ने ३२००० श्लोकों का सार १५० श्लोकों में रखने का साहस किया है। ये श्लोक सूत्र से ही हैं लेकिन प्रयत्न यह किया गया है कि इनमें योगवासिष्ठ के सारे सिद्धान्त आजायें। फिर भी यही विचार मन में आता है कि कहां ३२००० और कहां १५० ! कहां क्षीर समुद्र और कहां मेरी छोटी सी लुटिया ! आशा है विद्वान् लोग क्षमा करेंगे।

रामनवमी सम्वत् १९९०

भी. ला. आत्रेय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका ।

श्रीयोगवासिष्ठ-महारामायण, जिसका सार इन १९० श्लोकों में लेखक ने रखने का प्रयत्न और साहस किया है, संस्कृत साहित्य में एक विलक्षण ग्रन्थ है। जिसने भी इसका आद्योपान्त अध्ययन किया है वही इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता है। ब्रह्मलीन परमहंस स्वामी रामतीर्थजी ने अपने एक अमेरिका में दिये हुये व्याख्यान में योगवासिष्ठ के सम्बन्ध में कहा है, "योगवासिष्ठ भारत के सर्वोत्तम ग्रन्थों में से है। मेरी राय में तो यह ग्रन्थ भूमण्डल के समस्त ग्रन्थों से अद्भुत ग्रन्थ है। इसका अध्ययन करने पर ब्रह्मानन्द का अनुभव न होना असम्भव है"। काशी के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर भगवान दास जी ने लिखा है, "वेदान्तियों की यह धारणा है कि योगवासिष्ठ सिद्धावस्था का ग्रन्थ है, और दूसरे ग्रन्थ—भगवद्गीता, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र—साधनावस्था के ग्रन्थ हैं; अर्थात् ये उन लोगों के लिये हैं जिनको अभी तक ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई"। लाला बैजनाथजी, जिन्होंने योगवासिष्ठ का हिन्दी अनुवाद कराया है, अपनी भूमिका में लिखते हैं, "वेदान्त में कोई ग्रन्थ ऐसा विस्तृत और अद्वैत सिद्धान्त को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतने आख्यानों और दृष्टान्तों और युक्तियों से ऐसे दृढ़ प्रतिपादन करने वाला आजतक नहीं लिखा गया"। स्वयं योगवासिष्ठ में भी कहीं २ पर इस ग्रन्थ का माहात्म्य लिखा है; वह अक्षरशः सत्य प्रतीत होता है। यथा :—

इदं समस्तविज्ञानशास्त्रकोशं विदुर्बुधाः।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्कचित् ॥ १ ॥
अस्मिन्श्रुते मते ज्ञाते तपोध्यानजपादिकम्।
मोक्षप्राप्तौ नरस्येह न किञ्चिदुपयुज्यते ॥ २ ॥
ग्रन्थेनानेन लोकोऽयमस्मात्संसारसंकटात्।
समुत्तरिष्यति क्षिप्रं पोतेनैवाशु सागरात् ॥ ॥ ३ ॥
स्वयमेव यथा पीते नीरोगत्वं वरौषधे।
जीवन्मुक्तत्वमस्मिंस्तु श्रुते समनुभूयते ॥ ४ ॥

अर्थात् विद्वान् लोग इस ग्रन्थ को समस्त अध्यात्म शास्त्रों का कोष समझते हैं। जो बातें इसमें हैं वेही और ग्रन्थों में हैं और जो इसमें नहीं हैं वे कहीं भी नहीं मिलतीं ॥ १ ॥ इस ग्रन्थ को सुनने, विचारने और समझने पर मोक्ष प्राप्ति के लिये और किसी साधन, तप, ध्यान, जप आदि की आवश्यकता नहीं रहती ॥ २ ॥ इस ग्रन्थ के द्वारा मनुष्य इस प्रकार आसानी से संसार के दुखों से पार हो जाता है जैसे कि जहाज़ द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समुद्र से ॥ ३ ॥ जिस प्रकार उत्तम औषधि के सेवन करने से मनुष्य निरोगी हो जाता है, वैसेही इस ग्रन्थ के अध्ययन करने से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है ।

यह ग्रन्थ कब लिखा गया होगा इस विषय में बहुत ही मतभेद है । एक ओर तो पुराना यह मत है कि यह ग्रन्थ आदि कवि श्रीवाल्मीकिजी का रचा हुआ है । दूसरी ओर आधुनिक विद्वान् चौदहवीं—तेरहवीं (Farquhar : *Religious Literature of India*, p. 228), बारहवीं—दसवीं (Shiva Prasad Bhattacharya : a paper on the probable date of *Yogavāsiṣṭha* in the *Proceedings of the third Oriental Conference*, Madras, p. 554) या नवीं शताब्दी (ईस्वी) (Winternitz : *Geschicte der indischen Litteratur*, vol. III. p. 443 note) में इसका रचना-काल बताते हैं । लेखक ने अपनी अंग्रेज़ी पुस्तकों (*Philosophy of Yogavāsiṣṭha* और *Yogavāsiṣṭha and Its Philosophy*) में इन सब मतों पर विचार करके इनका खण्डन किया है, और यह सिद्ध किया है कि योगवासिष्ठ अवश्य ही शङ्कर, गौड़पाद और भर्तृहरि के समय से पहिले लिखा गया होगा । इन लेखकों पर योगवासिष्ठ के सिद्धान्तों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है, और इनके ग्रन्थों (विवेक चूड़ामणि, स्वात्मनिरूपण, आत्मबोध, शतश्लोकी, अपरोक्षानुभूति; माण्डूक्यकारिका; वैराग्यशतक और वाक्यपदीय) में योगवासिष्ठ के श्लोक तथा उनकी छाया पाई जाती है। लेखक का यह मत है कि योगवासिष्ठ अवश्य ही भर्तृहरि (जो कि ६५० क्रिश्चियन सम्वत् में मरे) के समय से पहिले लिखा गया होगा। इस ग्रन्थ में योगाचार और माध्यमिक बौद्धमत के सिद्धान्तों का समावेश और समन्वय है। इसलिये इसको हम इन मतों के प्रचार से पहिले लिखा हुआ कभी नहीं मान सकते। कालीदास के मेघदूत की छाया भी एक स्थान पर (६।११९।२-३) इस ग्रन्थ में पाई जाती है। पहिले प्रकरण के पहिले सर्ग के पढ़ने से भी यह ज्ञात होता है कि श्रीवाल्मीकि के लिखे हुए ग्रन्थ की कई आवृत्तियां हो चुकी होंगी। महाभारत अनुशासन पर्व (२।५-९) से यह भी ज्ञात होता है कि अवश्य ही कोई ऐसा ग्रन्थ था जिसमें वसिष्ठजी के मतों का उल्लेख रहा होगा। इन सब विचारों से ऐसा ज्ञात होता है कि श्री वाल्मीकिजी का लिखा हुआ कोई ग्रन्थ था जिसका पुनरुद्धार अथवा पुनर्लेखन कविकालीदास के समय के पीछे और भर्तृहरि के समय के पहिले हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहे जब लिखा गया हो, इसमें किञ्चित-मात्र भी सन्देह नहीं है कि इस ग्रन्थ का प्रभाव वेदान्त-सिद्धान्त प्रतिपादन करनेवाले लेखकों पर बहुत ही पड़ा। ऊपर लिखे ग्रन्थों के सिवाय योगवासिष्ठ का प्रभाव सुरेश्वराचार्य के मानसोल्लास, विद्यारण्य स्वामी के जीवन्मुक्तिविवेक और पञ्चदशी, नारायण भट्ट के भक्तिसागर, प्रकाशात्मा के वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली, हठयोगप्रदीपिका और रामगीता आदि ग्रन्थों में श्रीयोगवासिष्ठ के सिद्धान्त और अक्षरशः श्लोक पाये जाते हैं।

केवल यह ही नहीं, बहुत गहरी खोज करने पर लेखक को यह मालूम हुआ है कि १०८ उपनिषदों में से बहुत से उपनिषद् ऐसे हैं जो कि सब के सब अथवा जिनके कुछ भाग (प्रधान भाग) योगवासिष्ठ के चुने हुए श्लोकों से ही बने हैं, अथवा जिनमें कहीं २ पर योगवासिष्ठ के श्लोक पाये जाते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि पुरातन समय में हस्तलिखित पुस्तकें होने से बड़ा ग्रन्थ योगवासिष्ठ आसानी से न मिलने के कारण लोगों ने इसमें से अपनी अपनी रुचि के अनुसार श्लोकों को छांट कर उनका नाम उपनिषद् रख लिया था। लेखक के मतानुसार निम्नलिखित उपनिषदों में योगवासिष्ठ के श्लोक पाये जाते हैं (देखिये— B. L. Atreya : *Yogavāsiṣṭha and Some of the*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Minor Upaniṣads published in *The Saraswati Bhavana Studies* edited by Principal Gopinath Kaviraj):—

१. महा उपनिषद्—पहिला अध्याय छोड़कर सारा उपनिषद् योगवासिष्ठ के श्लोकों (क़रीब ५१० श्लोक) से बना है।

२. अन्नपूर्णा उपनिषद्—आरम्भ के कुछ (१७) श्लोक छोड़कर सारा उपनिषद् (३३७ श्लोक) योगवासिष्ठ के श्लोकों से ही बना है।

३. अक्षि उपनिषद्—सम्पूर्ण।

४. मुक्तिकोपनिषद्—दूसरा अध्याय जो कि मुख्य अध्याय है।

५. बाराह उपनिषद्—चौथा अध्याय।

६. बृहत्सन्यासोपनिषद्—५० श्लोक।

७. शाण्डिल्य उपनिषद्—१८ श्लोक।

८. याज्ञवल्क्य उपनिषद्—१० श्लोक।

९. योगकुण्डली उपनिषद्—३ श्लोक।

१०. पैङ्गल उपनिषत्—१ श्लोक।

इनके अतिरिक्त दूसरे कुछ ऐसे उपनिषद् भी हैं जिनमें योग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वासिष्ठ के श्लोक तो अक्षरशः नहीं पाये जाते लेकिन योगवासिष्ठ के सिद्धान्त अवश्य ही मिलते हैं। वे ये हैं :—

१. जाबाल उपनिषद्—समाधि खण्ड।
२. योगशिखोपनिषद्—१।३४-३७, १।९९, ६०; ४ (समस्त), ६।५८, ९९-६४।
३. तेजोविन्दु उपनिषद्—समस्त।
४. त्रिपुरातपिनी उपनिषद्—उपनिषत् ५, श्लो० १-१९।
५. सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद्—द्वितीय खण्ड श्लोक १२-१६।
६. मैत्रायण्युपनिषद्—प्रपाठक ४, श्लोक १-११।
७. अमृतविन्दु उपनिषद्—श्लोक १-५।

योगवासिष्ठ इतना महत्वपूर्ण ग्रन्थ होते हुये भी आधुनिक विद्वानों का इसकी ओर कम ध्यान गया है। डा० दास गुप्त के *भारतीय दर्शन के इतिहास* के प्रथम भाग में जहां कि योगवासिष्ठ का बहुत बड़ा स्थान होना चाहिये था योगवासिष्ठ का नाम भी नहीं आया (अभी थोड़े दिन हुए प्रकाशित उसके दूसरे भाग में योगवासिष्ठ दर्शन पर एक पाठ आ गया है) प्रो० राधाकृष्णन के *भारतीय दर्शन* में भी योगवासिष्ठ पर कुछ नहीं लिखा गया। प्रो० अभ्यङ्कर ने अपने संपादित सर्वदर्शन संग्रह के अन्त में दी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुई दर्शन ग्रन्थों की नामावली में भी योगवासिष्ठ का नाम नहीं दिया।

इस अवज्ञा का कारण यह जान पड़ता है कि योगवासिष्ठ की शैली वैसी नहीं है जैसी कि प्रायः दर्शन ग्रन्थों की हुआ करती है। दर्शनग्रन्थ प्रायः क्लिष्ट, सूत्ररूप, न्याययुक्त भाषा में होते हैं। योगवासिष्ठ दूसरे ही ढङ्ग का ग्रन्थ है। इसमें दर्शन, साहित्य और उपाख्यान का ऐसा सुन्दर और आनन्ददायक मिश्रण है कि इसके अध्ययन करते करते ही मनुष्य "सत्यं शिवं सुन्दरम्" का अनुभव करने लगता है। यह ग्रन्थ इतना अद्भुत है कि इसमें जटिल से जटिल दार्शनिक सिद्धान्त और युक्तियां काव्य और कहानियों के रूप में रख दी गई हैं। इस ग्रन्थ में किसी का खण्डन नहीं है। सब मतों का उच्चकोटि का समन्वय है, और सरल भाषा में ऊँचे से ऊँचे विचार प्रकट किये गये हैं। ग्रन्थकार स्वयं ही कहता है:—

शास्त्रं सुबोधमेवेदं सालङ्कारविभूषितम्।
काव्यं रसमयं चारुदृष्टान्तैः प्रतिपादितम्॥

अर्थात् यह शास्त्र (योगवासिष्ठ) आसानी से समझ में आजाने वाला, अनेक अलङ्कारों से विभूषित, रसमय काव्य है। यह मनोहर दृष्टान्तों द्वारा तत्वज्ञान का प्रतिपादन करता है॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि यह ग्रन्थ ऐसाही है। साहित्य अथवा उपाख्यानों की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ संस्कृत साहित्य में उच्च कोटि में रखने योग्य है। यही कारण है कि यह बहुत विस्तृत हो गया। ग्रन्थकार का कहना है कि इसमें ३२००० श्लोक हैं। अब तो इसमें (निर्णयसागर प्रेस से छपा हुआ) प्रायः २७६८७ श्लोक ही मिलते हैं। आजकल के समय में लोगों को इतना अवकाश नहीं मिलता कि इतना बड़ा ग्रन्थ अध्ययन कर सकें। पुराने समय में भी, जब कि ग्रन्थों को हाथ से लिखना पड़ता था, यह आवश्यकता पड़ी थी कि इसको संक्षिप्त किया जाए। सबसे पहिला संक्षेप नवीं शताब्दी में कश्मीरी पण्डित अभिनन्द गौड़ ने किया, और उसका नाम उन्होंने लघुयोगवासिष्ठ रक्खा। इसमें ४८२९ श्लोक हैं। लेकिन उनके कथनानुसार ६००० श्लोक थे। योगवासिष्ठ का दूसरा संक्षेप महाउपनिषद् है। इसमें ५३५ श्लोक हैं। इसका तीसरा संक्षेप अन्नपूर्णा उपनिषद है जिसमें ३३७ श्लोक हैं। एक और संक्षेप हमारे देखने में आया है जिसका नाम योगवासिष्ठसार है। इसमें २२५ श्लोक हैं। इन सब संक्षेपों में यह बड़ी भारी कमी है कि किसी एक में भी योगवासिष्ठ के सारे सिद्धान्त नहीं आते, और न वे क्रमबद्ध तरीक़े में ही रक्खे हुये हैं। योगवासिष्ठ का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कई वर्षों तक अध्ययन करने पर लेखक ने यह उचित समझा कि आजकल की रुचि के अनुसार योगवासिष्ठ का एक क्रमबद्ध और सर्वसिद्धान्तमय संक्षेप किया जाए। इस इच्छा से प्रेरित होकर लेखक ने एक संक्षेप—वासिष्ठदर्शन नामक—२९०० श्लोकों में किया—वह आजकल छप रहा है (Prince of Wales Saraswati Bhavana Texts, edited by Principal Gopinath Kaviraj, M. A.) यह वासिष्ठदर्शनसार, जो हिन्दी अनुवाद सहित पाठकों की भेंट है, उसी ग्रन्थ का १९० श्लोकों में सार है। कहां तक इसमें लेखक को सफलता हुई है इसका निर्णय विद्वानों के हाथ में है।

भी. ला. आत्रेय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओ३म्

अथ श्रीवासिष्ठदर्शनसारः ।

भाषानुवाद सहित ।

संसारनिःसारता :—

आयुरत्यन्तचपलं मृत्युरेकान्तनिष्ठुरः ।
तारुण्यं चातितरलं बाल्यं जडतया हृतम् ॥ १ ॥
कालकलङ्कितो लोको बन्धवो भवबन्धनम् ।
भोगा भवमहारोगास्तृष्णाश्च मृगतृष्णिकाः ॥ २ ॥
शत्रवश्चेन्द्रियाण्येव सत्यं यातमसत्यताम् ।
प्रहरत्यात्मनैवात्मा मनसैव मनो रिपुः ॥ ३ ॥
आगमापायिनो भावा भावना भवबन्धिनी ।
नीयते केवलं क्वापि नित्यं भूतपरम्परा ॥ ४ ॥
सर्व एव नरा मोहाद्दुराशापाशपाशिनः ।
दोषगुल्मकसारङ्गा विशीर्णा जन्मजङ्गले ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कास्ता दृशो यासु न सन्ति दोषाः
कास्ता दिशो यासु न दुःखदाहः ।
कास्ताः प्रजा यासु न भङ्गुरत्वं
कास्ताः क्रिया यासु न नाम माया ? ॥

संसार-निःसारता :—

आयु अत्यन्त चपल है, मौत सर्वथा क्रूर है, जवानी चलायमान है, बचपन मूर्खता में नष्ट होजाता है ॥१॥ यह संसार काल से कलङ्कित है, बन्धुजन सांसारिक बन्धन हैं, भोग संसार के महारोग हैं, और तृष्णा मृगतृष्णा है ॥२॥ इन्द्रियां ही शत्रु हैं, सत्य भी अज्ञान द्वारा असत्य होगया है, आत्मा ही अपना शत्रु होकर मन द्वारा ही मनको तङ्ग करता है ॥३॥ विद्यमान पदार्थ उत्पति-और-विनाशशील हैं, विषय-वासना ही संसार में बन्धन का कारण है । काल समस्त प्राणियों को न जाने कहां लेजा रहा हैं ॥४॥ सब मनुष्य मोहद्वारा दुष्ट आशारूपी फांसे (पाश) में पड़कर, दोषरूपी झाड़ में फंसे हुए मृग की तरह, जन्मरूपी जंगल में नष्ट हो रहे हैं ॥५॥ ऐसी कौनसी दृष्टि है जो निर्दोष हो ? ऐसी कौनसी दिशा है जहां दुःखरूपी अग्नि से मनुष्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पीड़ित न हो ? ऐसी कौनसी उत्पन्न वस्तु है जो कि नाशमान न हो ? ऐसे कौन से सांसारिक काम हैं जिनमें छल न हो ? ॥६॥

जिज्ञासा :—

अतोऽतुच्छमनायासमनुपाधि गतभ्रमम् ।
किं तत्स्थितिपदं साधो यत्र शोको न विद्यते ॥ ७ ॥
क्व उपायो गतिः का वा का चिन्ता कः समाश्रयः ।
केनेयमशुभोदर्का न भवेज्जीविताटवी ॥ ८ ॥

जिज्ञासा :—

हे साधो ! ऐसा कौनसा श्रेष्ठ, निष्क्लेश निरुपाधि व भ्रमरहित पद है, जहाँ कि शोक न हो ? ॥७॥ ऐसा कौनसा उपाय है, कौनसा रास्ता है, कौनसा विचार अथवा कौनसा सहारा है, जिससे यह जीवनरूपी वन अशुभ फल वाला न हो ? ॥८॥

अज्ञस्यैव दुःखभाजनत्वम् :—

इयं संसारसरणिर्वहत्यज्ञप्रमादतः ।
अज्ञस्योग्राणि दुःखानि सुखान्यपि दृढानि च ॥९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूर्ख ही दुःख का पात्र है :—

यह संसाररूपी प्रवाह मूर्खों के प्रमाद से है मूर्ख के ही लिये संसार के घोर दुःख सुख हैं ॥९॥

ज्ञानमेव दुःखनिवृत्त्युपायः :—

प्राज्ञं विज्ञातविज्ञेयं सम्यग्दर्शनमाधयः ।
न दहन्ति वनं वर्षासिक्तमग्निशिखा इव ॥ १० ॥

ज्ञान ही दुःख से छुटकारा पाने का उपाय है :—

जिस प्रकार वर्षा से तर हुए वन को अग्नि की शिखायें नहीं जला सकतीं, उसी प्रकार मानसिक पीडायें तत्त्वज्ञानी बुद्धिमान् ब्रह्मसाक्षात्कार किये हुए मनुष्य को नहीं स्पर्श करतीं ॥१०॥

पौरुषमहिमा :—

अत्रैकं पौरुषं यत्नं वर्जयित्वेतरा गतिः ।
सर्वदुःखक्षयप्राप्तौ न काचिदुपपद्यते ॥ ११ ॥
यो यमर्थं प्रार्थयते तदर्थं चेहते क्रमात् ।
अवश्यं स तमाप्नोति न चेदर्धान्निवर्तते ॥ १२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

येा येा यथा प्रयतते स स तत्तत्फलैकभाक् ।
न तु तूष्णीं स्थितेनेह केनचित्प्राप्यते फलम् ॥ १३ ॥
ये समुद्योगमुत्सर्ज्य स्थिता दैवपरायणाः ।
ते धर्ममर्थं कामञ्च नाशयन्त्यात्मविद्विषः ॥१४॥
दैवं न किञ्चित्कुरुते केवलं कल्पनेदृशी । (२-६-३)
मूढैः प्रकल्पितं दैवं तत्परास्ते क्षयं गताः ॥ १५ ॥
सिद्धस्य पौरुषेणेह फलस्य फलशालिना ।
शुभाशुभार्थसम्पत्तिर्दैवशब्देन कथ्यते ॥ १६ ॥
प्राक्स्वकर्मेतराकारं दैवं नाम न विद्यते ।
प्राक्तनं पौरुषं तद्धि दैवशब्देन कथ्यते ॥ १७ ॥
द्वौ हुडाविव युध्येते पुरुषार्थौ परस्परम् ।
य एव बलवांस्तत्र स एव जयति क्षणात् ॥ १८ ॥

पुरुषार्थ की महिमा :—

इस संसार में समस्त दुःखों से छुटकारा पाने के लिये पुरुषार्थरूपी यत्न के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है ॥११॥ जो जिस वस्तु को चाहता है और उसकी प्राप्ति के लिये युक्त यत्न करता है वह यदि बीचमें प्रयत्न को न छोड़े तो अवश्यही उस वस्तु को पाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है ॥१२॥ जो जो प्राणी जिस प्रकार का यत्न करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है। इस संसार में चुपचाप बैठे रहने से किसी को भी कोई फल नहीं मिल सकता ॥ १३ ॥ जो मनुष्य उद्योग को छोड़कर दैव (भाग्य) के आधीन होकर बैठ जाते हैं, वे आत्म-द्वेषी हैं और धर्म, अर्थ, काम को नष्ट करते हैं ॥ १४ ॥ दैव (तक़दीर) कुछ नहीं करता वह तो कल्पना मात्र है। मूर्ख मनुष्य ऐसे कल्पित दैव के आश्रित होकर अपने आपको नष्टकर बैठते हैं ॥ १५ ॥ फल देने वाले पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त हुए बुरे और भले परिणाम को ही दैव कहते हैं ॥१६ ॥ पहिले किये हुए कर्मों के अतिरिक्त दैव कोई वस्तु नहीं है। पहले किये हुए पुरुषार्थ को ही दैव कहते हैं ॥ १७ ॥ दो मेढों के समान भूत और वर्तमान पुरुषार्थ परस्पर युद्ध करते हैं, जो उनमें बलवान् होता है वही क्षण भर में जीत जाता है ॥ १८ ॥

मुमुक्षुगुणाः :—

सन्तोषः साधुसङ्गश्च विचारोऽथ शमस्तथा ।
एत एव भवाम्बोधावुपायास्तरणे नृणाम् ॥१९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्ति को चाहने वाले के गुण :—

सन्तोष, श्रेष्ठ पुरुषों का संग, सदसद्विचार तथा विषय वासनाओं को रोकना, ये ही मनुष्यों के संसार-सागर से तरने के उपाय हैं ॥ १९ ॥

अनुभूतिरेव प्रमाणम् :—

सर्वप्रमाणसत्तानां पदमब्धिरपामिव ।
प्रमाणमेकमेवेह प्रत्यक्षं तदतः शृणु ॥ २० ॥
नात्मास्त्यनुमया राम न चाप्तवचनादिना ।
सर्वदा सर्वथा सर्वं स प्रत्यक्षोऽनुभूतितः ॥२१॥

अनुभव ही प्रमाण है :—

जैसे सब जलों का आधार समुद्र है, वैसे ही सब प्रमाणों का आधार प्रत्यक्ष ही यहां प्रमाण है ॥ २० ॥ हे राम! आत्मा न तो अनुमान से और न आप्त बचन आदि से जाना जाता है, वह सदा सर्वथा सर्वरूप से अनुभव द्वारा ही प्रत्यक्ष होता है ॥ २१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अद्वैतं सम्बन्धात् :—

न संभवति सम्बन्धो विषमाणां निरन्तरः
न परस्परसंबन्धाद्विनानुभवनं मिथः ॥ २२ ॥

सम्बन्ध से अद्वैत सिद्ध है :—

असदृश वस्तुओं का निरन्तर सम्बन्ध नहीं होता परस्पर सम्बन्ध के विना परस्पर अनुभव भी नहीं होता ॥ २२ ॥

दृश्यस्य बोधरूपत्वम् :—

द्रष्टृदृश्ये न यद्येकमभविष्यच्चिदात्मके ।
तद्दृश्यास्वादमज्ञः स्यान्नादृष्ट्वेक्षुमिवोपलः ॥ २३ ॥

दृश्य बोधरूप ही है :—

यदि द्रष्टा और दृश्य चित्स्वरूप में एक न हों, तो जिस प्रकार पत्थर गन्ने के मिठास से अनभिज्ञ रहता है, उसी प्रकार द्रष्टा को भी दृश्य का ज्ञान नहीं हो सकता ॥ २३ ॥

पदार्थजातस्य संकल्पमयत्वम् :—

मनोमननिर्माणमात्रमेतज्जगत्त्रयम् ।
सर्वं संकल्परूपेण चिच्चमत्कुरुते चिति ॥ २४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब पदार्थ संकल्पमय हैं :—

ये तीनों लोक मन की ही कल्पना हैं। यह चित् संकल्परूप से ही सबको अपने स्वरूप में प्रकट करता रहता है ॥ २४ ॥

जाग्रत्स्वप्नयोरभेदः :—

जाग्रत्स्वप्नदशाभेदो न स्थिरास्थिरते विना ।
समः सदैव सर्वत्र समस्तेऽनुभवेऽनयोः ॥२५॥
स्वप्नोऽपि स्वप्नसमये स्थैर्याज्जाग्रत्वमृच्छति ।
अस्थैर्याज्जाग्रदेवास्ते स्वप्नस्तादृशबोधतः ॥ २६ ॥

जागृत और स्वप्न में कोई भेद नहीं है :—

स्थिरता और अस्थिरता को छोड़कर जागृत और स्वप्न में कोई भेद नहीं है। इन दोनों अवस्थाओं का सदाही सब अनुभव समान है ॥ २५ ॥ स्वप्न भी स्वप्न के अनुभव के समय स्थिर प्रतीत होने के कारण जागृत के समान ही अनुभूत होता है। ज्ञान होने पर जागृत भी अपनी अस्थिरता के कारण स्वप्न की तरह प्रतीत होता है ॥ २६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवं जीवं प्रति विश्वस्वप्नः :—

पृथक्प्रत्येकमुदितः प्रतिचित्तं जगद्भ्रमः ।
न किञ्चिदपि जानाति निजसंवेदनादृते ॥ २७ ॥

प्रत्येक जीव में विश्व का स्वप्न होता है :—

हर एक चित्त में अलग अलग जगत् का भ्रम उदय होता है । चित्त अपने ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता ॥ २७ ॥

सर्गादौ प्रजापतिकृतं जगत् :—

संकल्पयति यन्नाम प्रथमोऽसौ प्रजापतिः ।
तत्तदेवाशु भवति तस्येदं कल्पनं जगत् ॥२८॥

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ने यह जगत् बनाया :—

वह आदिम प्रजापति जो कुछ संकल्प करता है, वहही शीघ्र हो जाता है, उसी की कल्पना यह जगत् है ॥२८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाह्यार्थवादविज्ञानवादयोरैक्यम् :—

यादृगेव विराडात्मन्येष विस्तार आगतः ।
तादृगेवेह सर्वस्मिन्नणुमात्रेऽपि भूतके ॥ २९ ॥

प्रथमोऽसौ प्रतिस्पन्दः पदार्थानां हि बिम्बकम् ।
प्रतिबिम्बितमेतस्माद्यत्तदद्यापि संस्थितम् ॥ ३० ॥

महाचित्प्रतिभासत्वान्महानियतिनिश्चयात् ।
अन्योन्यमेव पश्यन्ति मिथः संप्रतिबिम्बितात् ॥३१॥

बाह्यार्थवाद और विज्ञानवाद की एकता :—

जैसा यह विस्तृत (फैला हुआ) जगत् विराट् रूप में है। वैसाही अणुमात्र में है ॥ २९ ॥ यह सबसे पहिला स्पन्दन पदार्थों का बिम्ब है और अभी तक उसी प्रकार मौजूद है। हमारा अपना जगत इसी का प्रतिबिम्ब है ॥ ३० ॥ महाचित् के आभास होने के कारण, महा नियति द्वारा नियंत्रित होने के कारण, एक दूसरे में प्रतिबिम्बित होने से सब प्राणी एक दूसरे को देखते हैं ॥ ३१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकल्पितस्यापि संकल्पयितृत्वम् :—

येा येा नाम यथा ग्रीष्मे कलपस्वेदाद्भवेत्कृमिः ।
यद्यद्दृश्यं शुद्धचित्खं तज्जीवेा भवति स्वतः ॥ ३२ ॥

संकल्पित पदार्थ में भी संकल्प करने की शक्ति रहती है :—

जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु (गरमी) में मैल और पसीने से काड़े पैदा हो जाते हैं उसी प्रकार यह जेा कुछ भी दृश्यमान है शुद्धचित् रूप होने के कारण स्वयं जीव बन जाता है ॥ ३२ ॥

सर्गे सर्गे सर्गान्तराणि :—

सर्गे सर्गे पृथग्रूपं सन्ति सर्गान्तराण्यपि ।
तेष्वप्यन्तस्थसर्गौघाः कदलीदलपीठवत् ॥३३॥

प्रत्येक सृष्टि में अनेक सृष्टि हैं :—

एक एक सर्ग में अलग अलग रूप से अनेक सृष्टियां हैं। और उनके अन्दर भी केले के खम्भे के अन्दर केले के पत्तों की तरह सृष्टियों के समूह हैं ॥ ३३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्परमदृष्टानि सर्गजालानि :—

प्रत्येकमन्तरन्यानि तथैवाभ्युदितानि च ।
परस्परमदृष्टानि बहूनि विविधानि च ।। ३४ ।।

सृष्टियों के समूह परस्पर अदृष्ट हैं :—

प्रत्येक सृष्टि के अन्दर अनेक बहुत तरह के परस्पर अदृष्ट सृष्टि समूह हैं ॥ ३४ ॥

सर्वस्य सर्वत्र सर्वदा संभवः :—

सर्वत्र सर्वथा सर्वं सर्वदा सर्वरूपिणि ।
सर्वं सर्वात्म सर्वत्र सर्वदास्ति तथा परे ।।३५।।

सब पदार्थों की सब जगह सब प्रकार से संभावना :—

सब जगत् सब स्थान पर सदाही सब रूपवाले (ब्रह्म) में है। परब्रह्म में सब पदार्थ सर्वरूप से, सर्वदा, सब जगह हैं ॥ ३५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनन्तानि जगन्ति :—

अनन्तानि जगन्त्यस्मिन्ब्रह्मतत्त्वमहाम्बरे ।
अम्बोधिवीचिजलवन्निमज्जन्त्युद्भवन्ति च ॥३६॥

जगत् अनन्त हैं :—

इस ब्रह्म रूपी महा आकाश में अनगिन जगत् समुद्र की तरङ्गों की तरह उत्पन्न व नष्ट होते रहते हैं ॥ ३६ ॥

सृष्टिप्रलययोः पौनःपुन्यम् :—

जीवौघाश्चोद्भविष्यन्ति मधाविव नवाङ्कुराः ।
तत्रैव लयमेष्यन्ति ग्रीष्मे मधुरसा इव ॥ ३७ ॥

सृष्टि और प्रलय का बार २ होना :—

वसन्त ऋतु के नये नये अंकुरों की तरह (ब्रह्म से) जीव समूह उत्पन्न होवेंगे । और ग्रीष्म ऋतु के फूलों की तरह उसी में नष्ट भी हो जावेंगे ॥ ३७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकाशत्रयम् :—

चित्ताकाशं चिदाकाशमाकाशं च तृतीयकम् ।
द्वाभ्यां शून्यतरं विद्धि चिदाकाशं वरानन ॥ ३८ ॥

तीन आकाश :—

चित्ताकाश, चिदाकाश और यह (भौतिक) आकाश, ये तीन आकाश हैं, इन तीनों में चिदाकाश सबसे सूक्ष्म है ॥ ३८ ॥

मनोरूपम् :—

अनन्तस्यात्मतत्त्वस्य सर्वशक्तेर्महात्मनः ।
संकल्पशक्तिरचितं यद्रूपं तन्मनो विदुः ॥ ३९ ॥

मन का रूप :—

अनन्त, सब शक्तियों वाले, महा आत्मा की संकल्पशक्ति से रचा हुआ रूप ही मन कहलाता है ॥ ३९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनोब्रह्मणोर्भेदः :—

चेत्येन रहिता यैषा चित्तद्ब्रह्म सनातनम् ।
चेत्येन सहिता यैषा चित्सेयं कलनोच्यते ॥ ४० ॥

मन व ब्रह्म में भेद :—

विषय रहित चित् (चिति)ही शुद्ध सनातन ब्रह्म कहलाती है । और विषय सहित चित् ही कलना (मन) कहलाती है ॥४०॥

मनसो रूपाणि नामानि च :—

यथा गच्छति शैलूषो रूपाण्यलं तथैव हि ।
मनो नामान्यनेकानि धत्ते कर्मान्तरं व्रजत् ॥ ४१ ॥
विचित्रकार्यवशतो नामभेदन कर्तृता ।
मनः सम्प्रोच्यते जीववासनाकर्मनामभिः ॥ ४२ ॥

मन के रूप और नाम :—

जैसे नट अनेक रूपों को धारण कर लेता है, वैसे ही मन भिन्न २ कर्म करता हुआ अनेक नाम वाला होता है ॥ ४१ ॥ भिन्न २ कार्यों से मन की कर्तृता भिन्न २ नाम वाली होती है । मन ही जीव, वासना, कर्म आदि नामों से पुकारा जाता है ॥४२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वसंकल्पकृतं जीवानां वेष्टनम् :—

स्ववासनादशावेशादाशावियशतां गताः
दशास्वतिविचित्रासु स्वयं निगडिताशयाः ॥ ४३ ॥

जीवों का बन्धन अपने ही संकल्प से है :—

ये जीव अपनी वासना की दशा के आवेश में होकर आशा के वश होजाते हैं। अतएव सुखदुःखमयी अत्यन्त विचित्र दशाओं में पड़ कर स्वयं ही बन्धन में पड़ जाते हैं ॥ ४३ ॥

जीवानामसंख्येयत्वम् :—

एवं जीवाश्रिता भावा भवभावनयोहिताः
ब्रह्मणः कल्पिताकाराल्लक्षशोऽप्यथ कोटिशः ॥४४॥
असंख्याताः पुरा जाता जायन्ते चापि वाद्य भोः।
उत्पतिष्यन्ति चैवाम्बुकणौघा इव निर्झरात् ॥ ४५ ॥

जीव असंख्य हैं :—

सांसारिक वासना से युक्त ये जीव लाखों और करोड़ों की संख्या में ब्रह्मा से उत्पन्न हुए ॥ ४४ ॥ पहिले भी ये जीव अनगिनित पैदा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए, और अब भी अनगिनित उत्पन्न होते हैं। झरने से झरते हुए जलके कणों की तरह आगे भी अनगिन जीव पैदा होंगे ॥ ४५ ॥

मनसो महत्त्वम् :—

जीवः संकल्पमात्रात्मा यत्संकल्पोऽवतिष्ठते ।
हृदि भूत्वा स एवाशु बहिः प्रसरति स्फुटम् ॥४६॥
सर्वं संपादयत्याशु स्वयं जीवः स्वमीहितम् ।
प्रत्येकमस्ति चिच्छक्तिर्जीवशक्तिस्वरूपिणी ॥४७॥
येन येन यथा यद्यद्यदा संवेद्यतेऽनघ ।
तेन तेन तथा तत्तत्तदा समनुभूयते ॥ ४८ ॥
मनो निर्मलसत्त्वात्म यद्भावयति तादृशम् ।
तत्तथाशु भवत्येव यथावर्तो भवेत्पयः ॥ ४९ ॥
दृढाभ्यासाभिधानेन यत्ननाम्ना स्वकर्मणा ॥
निजवेदनजेनैव सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ५० ॥
मनःप्रमादाद्धर्धन्ते दुःखानि गिरिकूटवत् ।
तद्वशादेव नश्यन्ति सूर्यस्याग्रे हिमं यथा ॥ ५१ ॥
मनसेदं शरीरं हि वासनार्थं प्रकल्पितम् ।
कृमिकोशप्रकारेण स्वात्मकोश इव स्वयम् ॥ ५२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तःशीतलतायां तु लब्धायां शीतलं जगत् ।
अन्तस्तृष्णोपतप्तानां दावादाहमयं जगत् ॥ ५३ ॥
पूर्णे मनसि सम्पूर्णं जगत्सर्वं सुधाद्रवैः ।
उपानद्गूढ़पादस्य ननु चर्मास्तृतैव भूः ॥ ५४ ॥
अस्य संसाररूपस्य मायाचक्रस्य राघव ।
चित्तं विद्धि महानाभिं भ्रमतो भ्रमदायिनः ॥ ५५ ॥
तस्मिन्द्रुतमवष्टब्धे धिया पुरुषयत्नतः ।
गृहीतनाभिवहनान्मायाचक्रं निरुध्यते ॥ ५६ ॥

मनका महत्त्व :—

जीव संकल्प रूप है । यह हृदय में जो कुछ संकल्प करता है वह शीघ्र ही उसी रूप से बाहर (बाह्य जगत् में) उपस्थित हो जाता है ॥ ४६ ॥ जीव आपही अपने इच्छित पदार्थ शीघ्र अपनी शक्ति से सम्पादन कर लेता है । प्रत्येक वस्तु में जीवशक्ति स्वरूपवाली चितशक्ति वर्तमान है ॥ ४७ ॥ जो कोई जिस वस्तु की जिस प्रकार कल्पना करता है, वह उस बस्तु का उसी प्रकार अनुभव करता है ॥ ४८ ॥ निर्मल तथा सात्त्विक मन जिस वस्तु में जैसी भावना करता है, वह वस्तु शीघ्र ही उसी रूप में परिणत हो जाती है, जैसे कि जल आवर्त रूप में ॥ ४९ ॥ अपने ही ज्ञान से उत्पन्न हुए अपने ही यत्न रूपी कर्म के पुनः पुनः करने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से ही मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है; अन्यथा नहीं ॥ ५० ॥ मन के प्रमाद से पर्वत की चोटियों की तरह दुःख बढ़ते हैं। और मन के वश में होने से वे सूर्य के सामने बरफ़ के समान नष्ट हो जाते हैं ॥ ५१ ॥ यह शरीर मन ने ही अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये निर्माण किया है; जिस प्रकार कोषकार कीड़ा अपने रहने के लिये अपने कोष का निर्माण कर लेता है ॥ ५२ ॥ अपने अन्दर शीतलता प्राप्त होने पर जगत् शीतल प्रतीत होता है; और अपने अन्दर तृष्णा की अग्नि से तप्त जीवों के लिये यह जगत् अग्नि से जलते हुए वन के समान है ॥ ५३ ॥ जैसे जूता पहिने हुए मनुष्य को समस्त पृथ्वी चमड़े से ढकी मालूम होती है, उसी प्रकार ज्ञान से पूर्ण मनवाले केलिये यह सम्पूर्ण जगत अमृत से परिपूर्ण मालूम होता है ॥ ५४ ॥ हे राम! चित्त को ही इस भ्रम में डालने वाले परिवर्तन शील संसाररूपी मायाचक्र की महानाभि समझो ॥ ५५ ॥ जिस प्रकार नाभि के पकड़ने से चक्र निरुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार बुद्धि और पुरुषार्थ द्वारा मनको रोकने से शीघ्र ही इस मायाचक्र (संसार) का निरोध हो जाता है ५६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोऽहम् :—

कुसुमेष्वहमामोदः पुष्पपत्रेष्वहं छविः ।
छविष्वहं रूपकला रूपेष्वनुभवोऽप्यहम् ॥ ५७ ॥
अपारपर्यन्तनभो दिक्कालादिक्रियान्वितम् ।
अहमेवेति सर्वत्र यः पश्यति स पश्यति ॥ ५८ ॥
यन्नाम किञ्चित्त्रैलोक्यं स एवावयवो मम ।
तरङ्गोऽब्धाविवेत्यन्तर्यः पश्यति स पश्यति ॥ ५९ ॥

मैं कौन हूँ :—

पुष्पों में सुगन्धि मैं हूँ; फूल पत्तियों में शोभा मैं हूँ; शोभाओं में मैं रूप की कला हूँ; और रूपों में अनुभव भी मैं ही हूँ ॥ ५७ ॥ देश काल आदि क्रिया से युक्त अनन्त आकाश मैं ही हूँ, ऐसा जो समझता है वही ठीक समझता है ॥ ५८ ॥ समुद्र में तरङ्गों की तरह ये तीनों लोक मेरे ही अङ्ग हैं, जो अपने चित्त में ऐसा जानता है वही ठीक जानता है ॥ ५९ ॥

मृतिः :—

मृतो नष्ट इति प्राज्ञो मन्ये तच्च मृषा ह्यसत् ।
स देशकालान्तरितो भूत्वा भूत्वानुभूयते ॥ ६० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुभूयक्षणं जीवो मिथ्यामरणमूर्च्छनम् ।
विस्मृत्य प्राक्तनं भावमन्यं पश्यति सुव्रत ॥ ६१ ॥
यत्रैव म्रियते जन्तुः पश्यत्याशु तदैव सः ।
तत्रैव भुवनाभोगमिममित्थमिव स्थितम् ॥ ६२ ॥
आशापाशशताबद्धा वासनाभावधारिणः ।
कायात्कायमुपायान्ति वृक्षाद्वृक्षमिवाण्डजाः॥ ६३ ॥
तावद्भ्रमन्ति संसारे वारिण्यावृतराशयः ।
यावन्मूढा न पश्यन्ति स्वात्मानमनिन्दितम्॥ ६४ ॥
न जायते न म्रियते चेतनः पुरुषः क्वचित् ।
स्वप्नसंभ्रमवद्भ्रान्तमेतत्पश्यति केवलम् ॥ ६५ ॥
देशकालक्रियाद्रव्यशुद्ध्यशुद्धीस्वकर्मणाम् ।
न्यूनत्वे चाधिकत्वे च नृणां कारणमायुषः ॥ ६६ ॥

मौत :—

मेरी राय में, मरा हुआ व्यक्ति नष्ट हो गया है यह कहना ठीक नहीं है। वह तो दूसरे देश और काल में उत्पन्न होकर दूसरे प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है ॥ ६० ॥ हे सुव्रत ! यह जीव मिथ्या मरने की मूर्छा का क्षणभर अनुभव करके पूर्व जन्म के भाव को भूल कर दूसरे भाव का अनुभव करता है ॥ ६१ ॥ जहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर यह प्राणी मरता है उसी स्थान पर शीघ्र ही इसी प्रकार से स्थित दूसरे जगत् का अनुभव करता है ॥ ६२ ॥ जैसे एक वृक्ष से उड़कर दूसरे वृक्ष पर पक्षी चले जाते हैं उसी प्रकार सैकड़ों आशारूपी फांसों में जकड़े हुए वासनाओं को हृदय में धारण किये हुए जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में जाते हैं ॥ ६३ ॥ अज्ञानी जीव जब तक अपने शुद्ध आत्मा का दर्शन नहीं करते तब तक जल में भँवरों के समान संसार में भ्रमण करते रहते हैं ॥६४॥ चेतन पुरुष न कहीं मरता है न उत्पन्न होता है। केवल स्वप्न भ्रम की तरह इस जगत् के भ्रम का अनुभव करता है ॥ ६५ ॥ देश काल क्रिया और द्रव्य तथा अपने कर्मों की शुद्धि और अशुद्धि मनुष्यों की आयु के अधिक व न्यून होने के कारण हैं ॥ ६६ ॥

ब्रह्मा :—

सर्गादौ स्वप्नपुरुषन्यायेनादिप्रजापतिः ।
यथा स्फुटं प्रकचितस्तथाद्यापि स्थिता स्थितिः ॥६७॥
विरिञ्चो मनसोरूपं विरिञ्चस्य मनो वपुः ।
मनस्तामिव यातेन ब्रह्मणा तन्यते जगत् ॥ ६८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नमात्मतत्वं स्वशक्तितः ।
लीलयैव तदादत्ते दिक्कालकलितं वपुः ॥ ६६ ॥
स्वयमन्यैवमस्मीति भावयित्वा स्वभावतः ।
अन्यतामिव संयाति स्वविकल्पात्मिकां स्वतः ॥ ७० ॥
आतिवाहिक एवासौ देहोऽस्त्यस्य स्वयंभुवः ।
न त्वाधिभौतिको राम देहोऽजस्योपपद्यते ॥ ७१ ॥
मनो नाम्नो मनुष्यस्य विरिञ्च्याकारधारिणः ॥॥
मनोराज्यं जगदिति सत्यरूपमिव स्थितम् ॥

ब्रह्मा :—

सृष्टि के आरम्भ में स्वप्न-पुरुष की तरह आदि प्रजापति जिस प्रकार आविर्भूत हुआ, उसी प्रकार वह अब तक भी वर्तमान है ॥ ६७ ॥ ब्रह्मा मन ही का एक रूप है; ब्रह्मा का शरीर मन है; ब्रह्मा मन का रूप धारण करके जगत् का विस्तार करता है ॥ ६८ ॥ दिक्काल आदि से रहित आत्मतत्त्व, अपनी शक्ति द्वारा, लीला से ही इस दिक्कालयुक्त रूप को धारण करता है ॥ ६९ ॥ निज स्वभाव से प्रेरित होकर वह स्वयं ही यह भावना करता है कि मैं दूसरा हूँ । और इस भावना के कारण वह स्वयं कल्पित अन्यता को प्राप्त होता है ॥ ७० ॥ इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयंभू (ब्रह्मा) का शरीर सूक्ष्म ही है ; स्थूल नहीं है ॥ ७१ ॥ सत्यवत् स्थित यह जगत् ब्रह्मा का रूप धारण किये हुये मन की ही कल्पना है ॥ ७२ ॥

शक्तिः :—

समस्तशक्तिखचितं ब्रह्म सर्वेश्वरं सदा ।
ययैव शक्त्या स्फुरति प्राप्तां तामेव पश्यति ॥ ७३ ॥
स्पन्दशक्तिस्तदिच्छेदं दृश्याभासं तनोति सा ।
साकारस्य नरस्येच्छा यथा वै कल्पनापुरम ॥ ७४ ॥
सा राम प्रकृतिः प्रोक्ता शिवेच्छा पारमेश्वरी ।
जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिरकृत्रिमा ॥ ७५ ॥
ऊर्णनाभाद्यथा तन्तुर्जायते चेतनाज्जडः ।
नित्यात्प्रबुद्धात्पुरुषाद्ब्रह्मणः प्रकृतिस्तथा ॥ ७६ ॥
यथैकं पवनस्पन्दमेकमौष्ण्यानलौ यथा ।
चिन्मात्रं स्पन्दशक्तिश्च तथैवैकात्म सर्वदा ॥७७॥

शक्तिः—

सर्वेश्वर ब्रह्म सदा सर्वशक्ति सम्पन्न है । जिस शक्ति द्वारा जहां उसका प्रकाश होता है, उसको उसी तरह प्रकाशित हुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखता है ॥७३॥ जिस प्रकार साकार मनुष्य की इच्छा काल्पनिक नगर का निर्माण करती है, उसी प्रकार स्पन्द शक्ति रूपवाली परमेश्वर की इच्छा ही इस दृश्य जगत् का निर्माण करती है ॥७४॥ हे राम ! वह अकृत्रिम परमेश्वर की स्पन्दशक्ति शिवेच्छा, प्रकृति, जगन्माया नामों से प्रसिद्ध है ॥७५॥ जिस प्रकार चेतन मकड़ी से जड़ जाले की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार नित्य ज्ञान स्वरूप चेतन ब्रह्म से जड़ प्रकृति की उत्पत्ति होती है ॥७६॥ जिस प्रकार वायु और उसका चलना, अग्नि तथा उसकी उष्णता एक ही हैं, उसी प्रकार चिन्मात्र (ब्रह्म) तथा उसकी स्पन्दशक्ति एक ही हैं ॥७७॥

परं ब्रह्म :—

यस्मिन्सर्वं यतः सर्वं यत्सर्वं सर्वतश्च यत् ।
सर्वं सर्वतया सर्वं तत्सर्वं सर्वदा स्थितम् ॥ ७८ ॥
अवाच्यमनभिव्यक्तमतीन्द्रियमनामकम् ।
स्वरूपं नोपदेशस्य विषयो विदुषो हि तत् ॥ ७९ ॥
प्रसरन्ति यतश्चित्राः संसारासारदृष्टयः ।
अक्षयामृतसम्पूर्णादम्भोदादिव वृष्टयः ॥ ८० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रष्टृदर्शनदृश्यानां त्रयाणामुदयो यतः ।
यत्र वास्तभयश्चित्खं तद्विद्धि विगतामयम् ॥ ८१ ॥
अत्यन्ताभाव एवास्ति संसारस्य यथास्थितेः ।
यस्मिन्बोधमहाम्भोधौ तद्रूपं परमात्मनः ॥ ८२ ॥
अशून्यमिव यच्छून्यं यस्मिञ्छून्यं जगत्स्थितम् ।
सर्गौघे सति यच्छून्यं तद्रूपं परमात्मनः ॥ ८३ ॥

परब्रह्म :—

जिसमें सब है; जिससे सब है; जो सब है; जो सब ओर है; वह सब, सब रूप से, सर्वदा सर्वत्र स्थित है ॥७८॥ वह नाम रूप रहित है; इन्द्रियों द्वारा उसका ज्ञान नहीं हो सकता; उसको जानने वाला पुरुष भी उसका वणन नहीं कर सकता ॥७९॥ जिस प्रकार मेघसे वृष्टिधाराओं का उदय होता है, उसी प्रकार उस अक्षय नाशरहित और पूर्ण ब्रह्म से नाना प्रकार के असार संसार के अनुभवों का उदय होता है ॥८०॥ ब्रह्म वह निर्विकार चिदाकाश है जिससे द्रष्टा दर्शन और दृश्य तीनों का उदय होता है और जिसमें इनका अस्त भी होता है ॥८१॥ परमात्मा वह ज्ञान रूपी महा समुद्र है, जिसमें यथा स्थित संसार का अत्यन्ताभाव है ॥८२॥ जो शून्य होते हुए भी अशून्य के समान है; जिसमें जगत्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तमान रहता हुआ भी शून्य है; जो सृष्टि समूहों के होते हुए भी शून्य है; वह परमात्मा का स्वरूप है ॥८३॥

बृंहणम् :—

ब्रह्मबृंहैव हि जगज्जगच्च ब्रह्मबृंहणम् ।
ब्रह्मैव तदनाद्यन्तमब्धिवत्प्रविजृम्भते ॥ ८४ ॥
यः कणो या च कणिका या वीचिर्यस्तरङ्गकः ।
यः फेनो या च लहरी तद्यथा वारि वारिणि ॥
यो देहो या च कलना यद्दृश्यं यैा क्षयाक्षयौ ।
या भावरचना योऽर्थस्तथा तद्ब्रह्म ब्रह्मणि ॥ ८६ ॥
फलपुष्पलतापत्रशाखाविटपमूलवान् ।
वृक्षबीजे यथा वृक्षस्तथेदं ब्रह्मणि स्थितम् ॥ ८७ ॥
चिति तत्त्वेऽस्ति नानाता तदभिव्यञ्जनात्मनि ।
विचित्रपिच्छिकापुञ्जो मयूराण्डरसे यथा ॥ ८८ ॥
यथा पयसि वीचीनामुन्मज्जननिमज्जनैः ।
न जलान्यत्वमेवं हि भावाभावैः परे पदे ॥ ८९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकास :—

जगत् ब्रह्म का विकास अथवा फैलाव है। वह अनादि अनन्त ब्रह्म ही समुद्र के समान जगत् रूप में प्रस्फुटित है ॥८४॥ जिस प्रकार कण और कणिका, वीचि और तरङ्ग, फेन और लहरी, जल में जलरूप हैं ॥ ८५ ॥ उसी प्रकार देह और मन, दृश्य, क्षय और वृद्धि, संसार रचना, पदार्थ, ब्रह्म में ब्रह्म ही हैं ॥ ८६ ॥ यह जगत् ब्रह्म में इस प्रकार स्थित है, जिस प्रकार बीज में फल, पुष्प, पत्र, लता शाखा, तना और जड़वाला वृक्ष वर्तमान रहता है ॥ ८७ ॥ तरह २ के पदार्थों को प्रकट करने वाले चित्स्वरूप ब्रह्म में पदार्थों की अनेकता इस प्रकार रहता है जिस प्रकार मोर की रङ्ग विरङ्गी पूँछ मोर के अंडे के रस में रहती है ॥८८॥ जिस प्रकार पानी में तरङ्गों की उत्पत्ति और विनाश से जल में भिन्नता नहीं आती है उसी प्रकार परमेश्वर में सृष्टि और प्रलय के द्वारा भिन्नता नहीं आसकती ८९ ॥

———

तादात्म्यम् :—

यथा कटकशब्दार्थः पृथक्त्वार्हो न काञ्चनात् ।
न हेम कटकात्तद्वज्जगच्छब्दार्थता परे ॥ ९० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाताले भूतले स्वर्गे तृणे प्राणयम्बरे ऽपि च ।
दृश्यते तत्परं ब्रह्म चिद्रूपं नान्यदस्ति हि ॥ ९१ ॥

तदात्मता :—

जिस प्रकार कड़ा नामवाली वस्तु सोने से पृथक् नहीं है, और कड़े का सोना कड़े से पृथक् कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार जगत् और ब्रह्म का सम्बन्ध है ॥ ९० ॥ पाताल में, भूतल में, स्वर्ग में, तिनके में, प्राणी में, आकाश में, जो कुछ भी दीखता है, वह चित् रूप परम ब्रह्म ही है, और कुछ नहीं है ॥ ९१ ॥

जगन्मिथ्यात्वम् :—

आदावन्ते च यन्नित्यं तत्सत्यं नाम नेतरत् ।
आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा ॥९२॥
मृगतृष्णाम्बिवासत्यं सत्यवत्प्रत्ययप्रदम् ।
अनुभूतं मनोराज्यमिवासत्यमवास्तवम् ॥ ९३ ॥
यावदज्ञानकलना यावदब्रह्मभावना ।
यावदास्था जगज्जाले तावच्चित्तादिकल्पना ॥९४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जगत् का मिथ्यात्व :—

विकारों का वही रूप सत्य है जो उनके आदि और अन्त में वर्तमान रहता है; जो आदि और अन्त में नहीं रहता वह वर्तमान में ही कैसे सत्य कहा जा सकता है ? ॥ ९२ ॥ यह जगत् मृगतृष्णा के जल की तरह असत्य होता हुआ भी सत्यवत् प्रतीत होता है। अनुभव किये हुये मनोराज्य की तरह यह असत्य और अवास्तव है ॥ ९३ ॥ जब तक अज्ञान रहता है और ब्रह्म भावना का उदय नहीं होता, और जब तक संसार के पदार्थों में विश्वास है, तभी तक चित्त आदि की कल्पना है ॥ ९४ ॥

———

परा दृष्टिः :—

जगच्छब्दस्य नामार्थो ननु नास्त्येव कश्चन ।
वस्तुतस्तु जगन्नास्ति सर्वं ब्रह्मैव केवलम् ॥ ९५ ॥
सिद्धान्तोऽध्यात्मशास्त्राणां सर्वोपह्नव एवहि ।
नाविद्यास्तीह नो माया शान्तं ब्रह्मेदमक्रमम् ॥ ९६ ॥
जगत्संविदि जातायामपि जातं न किञ्चन ।
परमाकाशमाशून्यमच्छमेव व्यवस्थितम् ॥ ९७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परा दृष्टि :—

वास्तव में जगत् है ही नहीं; जगत् नाम का कोई पदार्थ नहीं है; सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है ॥ ९५ ॥ अध्यात्म शास्त्रों का सर्वोच्च सिद्धान्त यह है कि न अविद्या है, न माया है, केवल सृष्टिकर्म-रहित शान्त ब्रह्म है ॥ ९६ ॥ जगत् का ज्ञान होते हुये भी वास्तव में कुछ उत्पन्न नहीं हुआ। शुद्ध अत्यन्त शून्य परम आकाश अपने स्वरूप में स्थित है ॥ ९७ ॥

आनन्दः :—

आनन्दायैव भूतानि यतन्ते यानि कानि चित् ।
आपदः सम्पदः सर्वाः सुखं दुःखाय केवलम् ॥ ९८ ॥
सर्वस्या एव पर्यन्ते सुखाशायाश्च संस्थितम् ।
मालिन्यं दुखमप्येवं ज्वालाया इव कज्जलम् ॥ ९९ ॥
रम्ये धनेऽथ दारादौ हर्षस्यावसरो हि कः ।
वृद्धायां मृगतृष्णायां किमानन्दो जलार्थिनाम् ॥ १०० ॥
इच्छोदयो यथा दुःखमिच्छाशान्तिर्यथा सुखम् ।
तथा न नरके नापि ब्रह्मलोके ऽनुभूयते ॥ १०१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपि राज्यादपि स्वर्गादपीन्दोरपि माधवात् ।
अपि कान्तासमासङ्गान्नैराश्यं परमं सुखम् ॥ १०२ ॥
यत्रनाभ्युदितं चित्तं तत्तत्सुखमकृत्रिमम् ।
न स्वर्गादौ सम्भवति मरौ हिमग्रहं यथा ॥ १०३ ॥
क्षणं वर्षसहस्रं वा तत्र लब्ध्वा स्थितिं मनः ।
रतिमेति न भोगौघे दृष्टस्वर्ग इवावनौ ॥ १०४ ॥

आनन्द : —

सब प्राणी आनन्द प्राप्ति के लिये ही यत्न करते हैं । किन्तु सांसारिक सब सम्पदायें आपत्ति-रूप ही हैं ; क्योंकि सब सुख दुःख देने वाले हैं ॥ ९८ ॥ जिस प्रकार अग्निज्वाला का अन्त कालिमा में होता है उसी प्रकार सब सुखाशाओं का अन्त दुःखमय है ॥ ९९ ॥ जैसे मृगतृष्णा की नदी में बाढ़ आने पर भी जल चाहने वालों को कुछ आनन्द नहीं होता, उसी प्रकार धन दारा आदि सांसारिक रम्य पदार्थों के होने पर भी हर्ष करने का अवसर क्या है ? ॥ १०० ॥ इच्छा के उदय होने पर जैसा दुःख होता है, वैसा नरक में भी नहीं होता । इच्छा के शान्त होने पर जो सुख मिलता है, वह ब्रह्मलोक में भी नहीं मिल सकता ॥ १०१ ॥ राज्य के, स्वर्ग के,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रमा के, विष्णु के और रमणीय स्त्री के सङ्ग के सुख से अधिक सुख आशा के त्याग में है ॥ १०२ ॥ वास्तविक सुख का अनुभव तभी होता है जब कि चित्त का उदय न हो। इस सुख का अनुभव स्वर्ग आदि में इस प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार मरुस्थल में बरफ़ का घर ॥ १०३ ॥ जिस प्रकार स्वर्ग का अनुभव किये हुए पुरुष का चित्त पृथ्वी पर नहीं लगता, उसी प्रकार जिस मन ने क्षणभर अथवा हजारों वर्ष तक उस आनन्द का अनुभव किया है, उसे संसार के भोगों में आनन्द नहीं आता ॥ १०४ ॥

बन्धमोक्षौ :—

वासनातन्तुबद्धा ये आशापाशवशीकृताः ।
वश्यतां यान्ति ते लोके रज्जुबद्धाः खगा इव ॥१०५॥
अनन्तस्याप्रमेयस्य येनेयत्ता प्रकल्पिता ।
आत्मनस्तस्य तेनात्मा स्वात्मनैव वशीकृतः ॥१०६॥
ब्रह्मणो व्यतिरिक्तत्वं ब्रह्मार्णवगता अपि ।
भावयन्तो विमुह्यन्ति भीमासु भवभूमिषु ॥ १०७ ॥
हेतुर्विहरणे तेषामात्मविस्मरणादृते ।
न कश्चिल्लक्ष्यते साधो जन्मान्तरफलप्रदः ॥ १०८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहमित्येव संकल्पो बन्धायातिविनाशिने ।
नाहमित्येव संकल्पो मोक्षाय विमलात्मने ॥ १०६ ॥
अपरिज्ञात आत्मैव भ्रमतां समुपागतः ।
ज्ञात आत्मत्वमायाति सीमान्तः सर्वसंविदाम् ॥११०॥
अज्ञानस्य महाग्रन्थेर्मिथ्यावेद्यात्मनोऽसतः ।
अहमित्यर्थरूपस्य भेदो मोक्ष इति स्मृतः ॥ १११ ॥

बन्धन और मुक्ति :—

जिस प्रकार रस्सी से बँधे हुए पक्षी दूसरे के वश में हो जाते हैं, उसी प्रकार वासना रूपी धागों से बँधे हुए तथा आशा रूपी फांस से जकड़े हुए प्राणी भी इस लोक में बन्धन में पड़ जाते हैं ॥ १०५ ॥ जिसने अनन्त तथा अपरिमित आत्मा को महदूद (सीमाबद्ध) समझ लिया है, उसने अपने आपको आप ही बन्धन में डाल लिया है ॥ १०६ ॥ ब्रह्म रूपी समुद्र में रहकर भी जो अपने आप को ब्रह्म से अतिरिक्त समझते हैं, वे संसार की भयंकर स्थितियों में पड़कर मोह को प्राप्त होते रहते हैं ॥१०७॥ हे साधो ! उनके संसार में भटकने का जन्मान्तर फल देने वाला, आत्मा को भूल जाने के अतिरिक्त और कोई कारण नज़र नहीं आता ॥ १०८ ॥ मैं (कुछ) हूँ, यही संकल्प बरबाद करने वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्धन का कारण है। मैं (कुछ) नहीं हूं, यह संकल्प निर्मल मोक्ष को देने वाला है ॥ १०९ ॥ अज्ञात आत्मा ही भ्रम को प्राप्त होता है, और ज्ञात होने से ज्ञान की सीमा को प्राप्त कर लेता है ॥ ११० ॥ मिथ्या विषयात्मक असत् अहंरूपी अज्ञान की महाग्रन्थि को काटना ही मोक्ष कहलाता है ॥ १११ ॥

मोक्षोपायः :—

ज्ञानयुक्तिप्लवेनैव संसाराब्धिं सुदुस्तरम् ।
महाधियः समुत्तीर्णा निमेषेण रघूद्वह ॥ ११२ ॥
न तीर्थेन न दानेन न स्नानेन न विद्यया ।
न ध्यानेन न योगेन न तपोभिर्नचाध्वरैः ॥ ११३ ॥
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।
आत्मात्मना न चेत्त्रातस्तदुपायोऽस्तिनेतरः ॥११४ ॥
यद्यदासाद्यते किञ्चित्केनचित्क्वचिदेवहि ।
स्वशक्तिसंप्रवृत्या तल्लभ्यते नान्यतः क्वचित् ॥११५॥
सर्वेषामुत्तमस्थानानां सर्वासां चिरसंपदाम् ।
स्वमनोनिग्रहो भूमिर्भूमिः सस्यश्रियामिव ॥ ११६ ॥
क्रियते माधवादीनां प्रणयप्रार्थना स्वयम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथैव क्रियते कस्मान्न स्वकस्यैव चेतसः ॥ ११७ ॥
सर्वस्यैव जनस्यास्य विष्णुरभ्यन्तरे स्थितः ।
तं परित्यज्य ये यान्ति बहिर्विष्णुं नराधमाः ॥ ११८ ॥
गुरुश्चेदुद्धरत्यज्ञमात्मीयात्पौरुषादृते ।
उष्ट्रं दान्तं बलीवर्दं तत्कस्मान्नोद्धरत्यसौ ॥ ११९ ॥
मूलं स्वकर्मणः संविन्मनसो वासनात्मनः ।
त्यागो हि कर्मणां तस्मादादेहं नोपपद्यते ॥ १२० ॥

मोक्ष का उपाय :—

हे राम ! बुद्धिमान् पुरुष ज्ञानयुक्तिरूप नौका द्वारा बड़े दुस्तर संसार-समुद्र से क्षण भर में पार होजाते हैं ॥ ११२ ॥ तीर्थ से, दान से, स्नान से, विद्या से, ध्यान से, योग से, तप से आर यज्ञ से मुक्ति प्राप्त नहीं होती ॥ ११३ ॥ आत्मा ही आत्मा का बन्धु है; आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। यदि आत्मा आत्मा की रक्षा नहीं करता, तो दूसरा और कुछ उपाय नहीं ह ॥ ११४ ॥ जो २ कुछ कहीं पर कोई प्राप्त करता है, वह अपनी शक्ति के प्रयोग से ही प्राप्त करता है। दूसरे किसी उपाय से किसी को कुछ नहीं मिलता ॥ ११५ ॥ जैसे कि धानों के सौन्दर्य की उत्पादक यह भूमि है; उसी प्रकार सब उत्तम स्थानों का, तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिरकाल रहने वाली सब सम्पत्तियों का, हेतु मन का वशीकरण है ॥ ११६ ॥ यदि विष्णु आदि देवताओं को प्रसन्न करने के लिये प्रार्थना की जाती है, तो अपने ही चित्त की प्रार्थना क्यों नहीं करता, जिससे कि वह प्रसन्न रहे ॥ ११७ ॥ सब मनुष्यों के भीतर विष्णु वर्तमान है; उसको छोड़ कर जो बाह्य विष्णु की ओर जाते हैं, वे अधम पुरुष हैं ॥ ११८ ॥ यदि कोई गुरु किसी मूर्ख का उद्धार उसके पुरुषार्थ के बिना हो कर सकता है, तो वह बैल, ऊँट और हाथी का उद्धार क्यों नहीं करता ? ॥ ११९ ॥ हमारे कर्मों का मूल वासनामय मन का संवेदन है। इसलिये जब तक हम जीवित हैं, तब तक कर्मों का त्याग असंभव है ॥ १२० ॥

ज्ञानसिद्धिः :—

व्याचष्टे यः पठति च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत् ।
यतते न त्वनुष्ठाने ज्ञानबन्धुः स उच्यते ॥ १२१ ॥
जन्मान्तरशताभ्यस्ता राम संसारसंस्थितिः ।
सा चिराभ्यासयोगेन विना न क्षीयते क्वचित् ॥१२२॥
एकतत्त्वघनाभ्यासः प्राणानां विलयस्तथा ।
मनो विनिग्रहश्चेति मोक्षशब्दार्थसंग्रहः ॥ १२३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिष्वेतेषु प्रयोगेषु मनः प्रशमनं वरम् ।
साध्यं विद्धि तदेवाशु यथा भवति तच्छिवम् ॥१२४
वैराग्यात्कारणाभ्यासाद्युक्तितो व्यसनक्षयात् ।
परमार्थावबोधाच्च रोध्यन्ते प्राणवायवः ॥ १२५ ॥
चित्तं नाभिः किलास्येह मायाचक्रस्य सर्वतः ।
स्थीयते चेत्तदाक्रम्य तन्न किञ्चित्प्रबाधते ॥ १२६ ॥
मन एव विचारेण मन्ये विलयमेष्यति ।
मनोविलयमात्रेण ततः श्रेयो भविष्यति ॥ १२७ ॥
वासनैव महाराज स्वरूपं विद्धि चेतसः ।
चित्तशब्दस्तु पर्यायो वासनाया उदाहृतः ॥ १२८ ॥

ज्ञान का साधन :—

जो शास्त्र को केवल भोग (रुपया पैसा कमाने) के लिये पढ़ता और पढ़ाता है, और स्वयं उसके अनुसार, शिल्पी की तरह, अनुष्ठान नहीं करता, उसको ज्ञानबन्धु कहते हैं ॥ १२१ ॥ हे राम ! अनेक जन्मों से अभ्यास की हुई यह संसार की स्थिति बिना चिरकाल के अभ्यासयोग के कभी क्षीण नहीं होती ॥ १२२ ॥ एक तत्त्व का घना अभ्यास, प्राणों का निरोध, मन का निग्रह, मोक्ष शब्द के संक्षेप में ये अर्थ हैं ॥ १२३ ॥ इन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीनों प्रयोगों में मन को शान्त करना सबसे श्रेष्ठ है ; यह आसानी से सिद्ध होजाता है ; और मन के शान्त होते ही कल्याण होजाता है ॥ १२४ ॥ वैराग्य से, कारण (जगत् का कारण-ब्रह्म) की धारणा से, युक्तियों से, व्यसनों के क्षय से, परमार्थ के ज्ञान से, प्राणों का निरोध होता है ॥ १२५ ॥ इस सब ओर घूमने वाले माया-चक्र की नाभि चित्त है । इसको यदि आक्रमण करके रोक दिया जावे तो यह कुछ भी दुःख नहीं देता ॥ १२६ ॥ मेरे विचार में मन विचार द्वारा ही लय हो जाता है, और केवल मनके लय से कल्याण होता है ॥ १२७ ॥ हे महाराज ! वासना को ही चित्त का स्वरूप जानो, चित्त वासना का पर्यायवाची शब्द कहा जाता है ॥ १२८ ॥

सप्त ज्ञानभूमयः :—

अवबोधं विदुर्ज्ञानं तदिदं सप्तभूमिकम् ।
मुक्तिस्तु ज्ञयमित्युक्तं भूमिकासप्तकात्परम् ॥ १२९ ॥
ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता ।
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसा ॥ १३० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्याच्चतोऽसंसक्तिनामिका ।
पदार्थाभावनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ॥ १३१ ॥

ज्ञान की सात भूमियां :—

अववोध (सम्यक् बोध) को ही ज्ञान कहते हैं, उसकी सात भूमियां हैं। मुक्ति को सातों भूमियों से परे समझना चाहिये॥ १२९॥ (१) पहिली ज्ञान भूमि शुभेच्छा कही जाती है; (२) दूसरी विचारणा; (३) तीसरी तनुमानसा; (४) चौथी सत्त्वापत्ति; (५) पांचवी असंसक्ति; (६) छठी पदार्थों की अभावना; (७) सातवीं तुर्या ॥ १३०—१३१ ॥

कर्मपाशोच्छेदः :—

न स शैलो न तद्व्योम न सोऽब्धिश्चन विष्टपम् ।
अस्ति यत्र फलं नास्ति कृतानामात्मकर्मणाम् ॥१३२॥
कर्मबीजं मनस्पन्दः कथ्यतेऽथानुभूयते ।
क्रियास्तु विविधास्तस्य शाखाश्चित्रफलास्तरोः ॥१३३
अकारणमुपायान्ति सर्वे जीवाः परात्पदात् ।
पश्चात्तेषां स्वकर्माणि कारणं सुखदुःखयोः ॥ १३४ ॥
सर्वा हि वासनाऽभावे प्रयान्त्यफलतां क्रियाः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुभाः फलवन्त्येऽपि सेकाभावे लता इव ॥ १३५ ॥
समया स्वच्छया बुद्ध्या सततं निर्विकारया ।
यथा यत्क्रियते राम तददोषाय सर्वदा ॥ १३६ ॥

कर्मबन्धन का काटना :—

ऐसा कोई पर्वत नहीं है ; ऐसा कोई आकाश नहीं है ; ऐसा कोई समुद्र नहीं है ; ऐसा कोई स्वर्ग नहीं है ; जहां कि अपने किये हुए कर्मों का फल न मिलता हो ॥ १३२ ॥ यह कहा जाता है और अनुभव में भी आता है कि मन का स्पन्दन ही कर्मरूपीवृक्ष का बीज है। और तरह २ के फलवाली विविध क्रियाएँ उसकी शाखायें हैं ॥ १३३ ॥ पर ब्रह्म से सब जीव अकारण ही उदय होते हैं। फिर उनके कर्म उनके सुख दुःख के कारण होजाते हैं ॥ १३४॥ सब क्रियाएँ वासना न होने से व्यर्थ हो जाती हैं, चाहे वे अशुभ फल लानेवाली क्यों न हों; जिस प्रकार फलदेने वाली लतायें भी सींचे बिना फल नहीं लातीं ॥ १३५ ॥हे राम! जो कुछ सम, स्वच्छ और निर्विकार बुद्धि से किया जाता है उससे कभी भी कोई दोष उत्पन्न नहीं होता ॥ १३६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मानुभवः :—

संसारवासनाजाले खगजाल इवाखुना ।
त्रोटिते हृदयग्रन्थौ श्लथे वैरागरंहसा ॥ १३७ ॥
कातकं फलमासाद्य यथा वारि प्रसीदति ।
तथा विज्ञानवशतः स्वभावः संप्रसीदति ॥ १३८ ॥

आत्मा का अनुभव :—

जब कि संसार की वासनाओं का जाल इस प्रकार टूट जाये जिस प्रकार चूहे द्वारा पक्षियों का जाल कट जाता है, और वैराग्य की तीव्रता से हृदय की गाँठ ढीली पड़ जाये ॥ १३७ ॥ तब विज्ञान के कारण आत्मा का स्वरूप इस प्रकार प्रकाशित हो जाता है, जिस प्रकार कतक फल (निर्मली) के संयोग से जल निर्मल हो जाता है ॥ १३८ ॥

जीवन्मुक्तलक्षणानि :—

नालम्बते रसिकतां न च नीरसतां क्वचित् ।
नार्थेषु विचरत्यर्थी वीतरागः सरागवत् ॥ १३९ ॥
मनोज्ञमधुराचाराः प्रियपेशलवादिनः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवेचितारः कार्याणां निर्णेतारः क्षणादपि ॥ १४० ॥
उपेक्षते न संप्राप्तं नाप्राप्तमभिवाञ्छति ।
सोम्यसौम्यो भवत्यन्तः शीतलः सर्ववृत्तिषु ॥१४१॥
अनुद्वेगकराचारा बान्धवा नागरा इव ।
बहिः सर्वसमाचारा अन्तः सर्वार्थशीतलाः ॥ १४२ ॥
वर्णधर्माश्रमाचारशास्त्रयन्त्रणयोज्झितः ।
निर्गच्छति जगज्जालात्पञ्जरादिव केसरी ॥ १४३ ॥
न बिभेति न वादत्ते वैवश्यं न च दीनताम् ।
समः स्वस्थमना मौनी धीरस्तिष्ठति शैलवत् ॥ १४४ ॥
अनुबन्धपरे जन्तावसंसक्तेन चेतसा ।
भक्ते भक्तसमाचारः शठे शठ इव स्थितः ॥ १४५ ॥
बालो बालेषु वृद्धेषु वृद्धो धीरेषु धैर्यवान् ।
युवा यौवनवृत्तेषु दुःखेष्वनुदुखितः ॥ १४६ ॥
अयत्नोपनतं सर्वं लीलयाऽसक्तमानसः ।
भुंक्ते भोगभरं प्राज्ञस्त्वालोकमिव लोचनम् ॥ १४७ ॥
न त्यजन्ति न वाञ्छन्ति व्यवहारं जगद्गतम् ।
सर्वमेवानुवर्तन्ते पारावारविदो जनाः ॥ १४८ ॥
परिस्फुरति यस्यान्तर्नित्यं सत्त्वचमत्कृतिः ।
ब्राह्ममण्डमिवाखण्डं लोकेशाः पालयन्ति तम् ॥१४९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बलं बुद्धिश्च तेजश्च दृष्टतत्त्वस्य वर्द्धते ।
सवसन्तस्य वृक्षस्य सौन्दर्याद्या गुणा इव ॥ १५० ॥
इति श्रीवासिष्ठदर्शनसारः ।

जीवन्मुक्त के लक्षण :—

वह (जीवन्मुक्त) किसी पदार्थ के प्रति रसिकता अथवा नीरसता नहीं रखता; भिखारी की तरह वह सांसारिक वस्तुओं में नहीं विचरता; वीतराग रहने पर भी वह रागसहित मालूम पड़ता है ॥ १३९ ॥ वे मन के भावों को समझने वाले, प्रिय आचरण करने वाले, कोमल और मधुर बोलने वाले, कार्यों का शीघ्रही विवेचन व निर्णय करने वाले होते हैं ॥ १४० ॥ वह प्राप्त वस्तु की उपेक्षा नहीं करता; और अप्राप्त की इच्छा नहीं करता; वह सब वृत्तियों के होते हुए भी हृदय में चन्द्रमा के समान शान्त और शीतल रहता है ॥ १४१ ॥ उनका व्यवहार किसी को क्लेश नहीं पहुँचाता; उनका आचरण नागरिक और बन्धुओं जैसा होता है; वे बाहर से सब काम करते हुए भी अन्दर सब प्रकार से शीतल होते हैं ॥१४२॥ जिस प्रकार पिंजरे से सिंह बाहर निकल भागता है, उसी प्रकार वे भी वर्ण, धर्म, आश्रम, आचार और शास्त्र की जकड़ से स्वतन्त्र होकर, जगत् के जाल से बाहर निकल जाते हैं ॥ १४३ ॥ न वह डरता है; न विवश होता है; न दीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है ; सब अवस्थाओं में समान, स्वस्थमन मौनी और पर्वत के समान धीर रहता है ॥ १४४ ॥ वह अनासक्त रहकर जैसा अवसर पड़े वैसा दूसरे जीवों के प्रति व्यवहार करता है; भक्त के प्रति भक्त और शठके प्रति शठ होजाता है ॥ १४५ ॥ वह बालकों में बालक; बूढों में बूढा, धीर पुरुषोंमें धैर्यवान्; यौवनवृत्ति वालों में युवा और दुखियों में दुखी की नाईं आचरण करता है ॥ १४६ ॥ जिस प्रकार आँख सब दृश्य पदार्थों को देखती है; उसी प्रकार मुक्त पुरुष भी सब, बिना यत्न प्राप्त, भोगों को लीला और अनासक्त मन से भोगता है ॥ १४७ ॥ ब्रह्म और जगत् को जानने वाले वे तत्त्वज्ञानी साँसारिक व्यवहार से न तो मुँह मोड़ते हैं, और न उसकी इच्छा करते हैं; परन्तु सब यथोचित व्यवहार करते रहते हैं ॥ १४८ ॥ जिसके हृदय में सदा सत्त्व का प्रकाश रहता है, उसकी लोकपाल उसी प्रकार रक्षा करते हैं, जिस प्रकार वे सारे ब्रह्माण्ड की रक्षा करते हैं ॥ १४९॥ जिसने सत्य का अनुभव कर लिया है, उसके बल, बुद्धि, तेज, नित्यप्रति बढ़ते हैं, जिस प्रकार से वसन्त ऋतु में वृक्ष के सौन्दर्य आदि गुण बढ़ते हैं ॥ १५० ॥

इति श्रीवासिष्ठदर्शनसार ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi